वन एवं आदिवासी

महेन्द्र प्रताप सिंह
वन अधिकारी, वन विभाग,
17, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, भारत
mahendrapratapsingh_60@yahoo.com

इस लेख में भारत की प्रमुख जनजातियों एवं आदिम जातियों के सम्बन्ध में सामान्य जानकारी दी गयी है। आदिवासियों का वनों से सम्बन्ध एवं वन क्षेत्रों के साथ आदिवासियों के विकास के सम्बन्ध में विचार किया गया है। वर्तमान समय में वन विकास की वही अवधारणा ग्राह्य हो सकती है जिसमें आदिवासियों का हित सुरक्षित रहे। राष्ट्रीय वन नीति–1894 एवं 1952 द्वारा आदिवासियों को वनों का विरोधी मानते हुये उनके अधिकारों में कटौती की गयी। इससे आदिवासियों का हित प्रभावित हुआ तथा वे भावनात्मक रूप से वनों एवं वन कर्मियों के विरुद्ध हो गये। वनवासियों एवं अन्य अनुसूचित जनजाति की समस्याओं के दृष्टिगत भारत सरकार द्वारा 'अनुसूचित जनजाति व अन्य पारम्परिक वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम–2006 पारित किया गया है। इसमें वनवासियों के अधिकारों को व्यापक मान्यता प्रदान की गई है। इस अधिनियम द्वारा वनों एवं आदिवासियों के बीच पारम्परिक सम्बन्ध विकसित करने की दिशा में पुनः प्रभावी कदम उठाया गया है।

आदिवासियों एवं वनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमारी संस्कृति मूलतः अरण्य संस्कृति रही है। वन एवं वन्य जीवों को वहाँ के स्थानीय वनवासियों द्वारा अपने परिवार का अंग माना गया। वनवासी समाज द्वारा वनों में स्वतन्त्रतापूर्वक रहकर वहीं से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुये सदैव वनों को संरक्षित करने का कार्य किया है। विगत कुछ दशकों में आदिवासियों एवं वनों के बीच दूरी बढ़ी है। वे वनवासी जो वनों एवं वन्यजीवों के स्वाभाविक मित्र थे, उन्हें वन का विरोधी मानते हुए उनके परम्परागत अधिकारों में कटौती की गई। हाल ही में भारत सरकार द्वारा 'अनुसूचित जनजाति व अन्य पारम्परिक वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम–2006 के माध्यम से पुनः आदिवासियों को उनका पारम्परिक अधिकार दिलाने की दिशा में ठोस कदम उठाया गया।

आदिवासी एवं वनों के बीच प्रगाढ़ सम्बन्धों का ध्यान रखते हुये वन विकास निगमों सहित वन प्रबन्ध के लिये उत्तरदायी सभी अभिकरणों का प्रधान कार्य वनों में तथा उसके चारों ओर रहने वाले आदिवासियों को लाभदायक रोजगार उपलब्ध कराने के अतिरिक्त वनों की सुरक्षा, पुनरुद्धार एवं विकास के लिये आदिवासियों के लिये सहायता दिया जाना चाहिये। आदिवासियों के परम्परागत अधिकारों एवं हितों की रक्षा करते समय वानिकी कार्यक्रमों पर ध्यान देना चाहिये। वनों में ठेकेदारों के स्थान पर आदिवासी सहकारी समितियों, श्रमिक सहकारी समितियों अथवा राजकीय निगम जैसे संस्थान से कार्य कराया जाना चाहिये।

वनों पर आधारित उद्योग

वनों पर आधरित उद्योगों की स्थापना और उनको कच्चे माल की आपूर्ति का निर्धारण निम्न बातों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए–

- जहाँ तक सम्भव हो, वन आधारित उद्योग को उस फैक्टरी और व्यक्तियों के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित करके ऋण, निरन्तर तकनीकी सलाह और अन्तिम रूप से कटाई और परिवहन सेवाओं सहित निवेशों के साथ, जो व्यक्तियों की सहायता के लिये कच्चे माल पैदा कर सकते हैं, अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिये कच्चा माल पैदा करना चाहिये।

- गांव अथवा कुटीर उद्योग स्तर के अलावा, किसी भी वन आधारित उपक्रम को भविष्य में तब तक अनुमति न दी जाये जब तक कि कच्चे माल की आश्वासित उपलब्धता के सम्बन्ध में सावधानीपूर्वक जांच पड़ताल से इन्हें स्पष्ट न किया गया हो। इस प्रयोजन के लिये किसी भी हालत में स्थानीय जनता की ईंधन, चारे और इमारती लकड़ी की जरूरतों की अवहेलना नहीं की जानी चाहिये।

- वन आधारित उद्योग न केवल स्थानीय लोगों को प्राथमिकता के रूप से रोजगार प्रदान करें अपितु उनको पेड़ उगाने और कच्चा माल पैदा करने में भी शामिल करें।

- प्राकृतिक वन, जीन पूल संसाधन के रूप मे कार्य करते हैं तथा पारिस्थितिकीय सन्तुलन बनाए रखने में सहायक होते हैं। अतः उद्योगों को इस प्रकार के वनों को पौधारोपण और किन्हीं अन्य गतिविधियों के लिये उपलब्ध नहीं कराया जाना चाहिये।

- विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों को उनके पास उपलब्ध सीमान्त/अवक्रमित भूमि पर उद्योगों के लिये अपेक्षित काष्ठ प्रजातियां उगाने के लिये प्रोत्साहित किया जाये। इन्हें ईंधन और चारा प्रजातियों के साथ सामुदायिक भूमि, जिनको चारागाह प्रयोजनों के लिये आवश्यकता नही हैं, तथा वन विभाग/निगमों द्वारा अवक्रमित वन जो प्राकृतिक पुनर्जनन के लिये निर्धारित नहीं हैं, में भी उगाया जाये।

- उद्योगों को रियायती दरों पर वन उत्पादों की आपूर्ति की परम्परा को बन्द किया जाना चाहिये। उद्योगों को वैकल्पिक कच्चे माल का उपयोग करने के लिये प्रोत्साहित किया जाये। लकड़ी और लकड़ी उत्पादों के आयात को उदार बनाया जाये।

वन विस्तार

वन संरक्षण के कार्यक्रम लोगों की स्वेच्छा, समर्थन एवं सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकते। अतः यह आवश्यक है कि लोगों के मन में वनों, उसके विकास एवं संरक्षण के प्रति पर्याप्त रूचि उत्पन्न की जाये एवं वृक्षों, वन्यजीवों एवं प्रकृति के महत्व के प्रति उन्हें जागरूक किया जाए। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में शैक्षिक संस्थाओं का उपयोग किया जाना आवश्यक है। किसानों को शिक्षित करने हेतु अल्प अवधि के पाठ्यक्रम एवं कृषि विकास केन्द्रों/प्रशिक्षण केन्द्रों को विकसित किया जाना चाहिये। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु जनसंचार माध्यम, श्रव्य–दृश्य उपकरणों और विस्तार मशीनरी की सहायता से अच्छे कार्यक्रम तैयार कर उसे प्रचारित करना आवश्यक है।

वानिकी शिक्षा

वानिकी को एक वैज्ञानिक विषय के तौर पर और पेशे के तौर पर मान्यता दी जानी चाहिये। देश को मानवीय शक्ति में रखते हुये जो कृषि विश्वविद्यालय व संस्थान वानिकी शिक्षा के विकास के प्रति समर्पित हैं, उन्हें शैक्षणिक शिक्षा प्रदान करने और स्नातकोत्तर अनुसंधान तथा व्यावसायिक कौशल को प्रोत्साहित करने के लिये शैक्षिक एवं व्यावसायिक योग्यताओं को ध्यान में रखकर सेवाकालीन प्रशिक्षण द्वारा बेहतर प्रबन्ध कौशलों के विकास के लिये विशिष्ट और अनुकूल पाठ्यक्रमों को प्रोत्साहित किये जाने की आवश्यकता है।

वानिकी अनुसंधान

पर्यावरणीय स्वास्थ्य, ऊर्जा और रोजगार के लिये वनों के महत्व की बढ़ती हुयी मान्यता के साथ अनुसंधान आधार तथा कार्यवाही के लिये नई प्राथमिकताओं के उपयुक्त सुदृढ़ीकरण को आवश्यक मानते हुये वैज्ञानिक अनुसंधान पर जोर दिया जाना चाहिये। अनुसंधान और विकास के लिये विस्तृत प्राथमिकता वाले क्षेत्र जिन पर विशेष ध्यान दिये जाने की जरूरत है, वे इस प्रकार हैं–

1. आधुनिक वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी तरीकों का उपयोग करके लकड़ी तथा अन्य उत्पादों की उत्पादकता में क्षेत्र की प्रति इकाई/समय की प्रति इकाई वृद्धि करना।
2. बंजर/सीमांत/परती/खनिज भूमि और जल भराव वाले क्षेत्रों का पुनर्वनस्पतिकरण।
3. वर्तमान वन संसाधनों का प्रभावी संरक्षण और प्रबन्ध।
4. ग्रामीण/आदिवासी विकास के लिये सामाजिक वानिकी से सम्बन्धित अनुसंधान।

कार्मिक प्रबन्ध

- व्यावसायिक वन अधिकारियों तथा वन वैज्ञानिकों के लिये कार्मिक प्रबन्ध में सरकार की नीतियों का उद्देश्य विशेषकर दूरस्थ तथा दुर्गम स्थानों में उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यों के विकट स्वरूप को ध्यान में रखते हुये उनकी व्यावसायिक क्षमता और स्तर को उन्नत करना और योग्यता प्राप्त अभिप्रेरित कार्मिकों को आकर्षित करना तथा सेवा में रखना चाहिये।

- वन संसाधनों के बारे में आंकड़ों की अपर्याप्तता एक चिन्ता का विषय है, क्योंकि इससे आत्मसंतोष की एक भ्रान्ति जनक धारणा पैदा होती है। देश में वैज्ञानिक आधारों पर वन संसाधनों के सर्वेक्षण को पूरा करने की जानकारी को अद्यतन बनाने को प्राथमिकता दी जाये। इस प्रयोजन के लिये वन प्रबन्ध के संगत पहलुओं के सम्बन्ध में विश्वसनीय आंकड़ों के अविधिक संग्रहण, मिलान और प्रकाशन में आधुनिक प्रौद्योगिकी और उपकरणों में सुधार लाने की जरूरत है।

भारत की प्रमुख जनजातियों का संक्षेप में विवरण निम्न प्रकार है–

1. भील

1981 में इनकी जनसंख्या 55.27 लाख थी, जो 1991 में 97.30 लाख हो गई। ये मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, राजस्थान एवं त्रिपुरा राज्यों में पाए जाते हैं तथा अनुसूचित जनजाति के रूप में विनिर्दिष्ट हैं। भील योद्धा वंशज के हैं। राजस्थान के डूंगरपुर, भीलवाड़ा आदि में भीलों द्वारा स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की गई। ये सामान्यतया 'भीली' बोली बोलते हैं जिसकी कोई लिपि नहीं है। भीलों के जीवन यापन का प्रमुख स्रोत कृषि है। देश के अन्य समुदायों की तुलना में उनका खेती करने का ढंग अभी भी पुराना है। कृषि व्यवसाय अपनाने से पूर्व भील वन, वन्य उपजों एवं वन्य पशुओं के आखेट पर निर्भर थे। अभी भी कुछ भील वनों पर निर्भर हैं।

2. गोंड

1981 में इनकी जनसंख्या 74.48 लाख थी, जो 1991 में 93.19 लाख हो गई। ये मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, उड़ीसा एवं पश्चिम बंगाल राज्यों में पाए जाते हैं तथा अनुसूचित जन जाति के रूप में विनिर्दिष्ट हैं। 1947 के पूर्व महाराष्ट्र एवं छत्तीसगढ़ के कई राज्यों पर गोंड राजाओं का शासन था। गोंड मुख्यतः खेती एवं वनों पर आश्रित हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार 64 प्रतिशत गोंड किसान एवं 32 प्रतिशत खेतिहर मजदूर थे। कुछ क्षेत्रों में गोंडों के समूह अभी भी परिवर्तनीय खेती करते हैं। कुछ गोंड वन उपजों के संग्रहण, मछली मारना एवं शिकार आदि पर निर्भर हैं। दक्षिण बस्तर के डोड़िया एवं माड़िया आदि गोंडों का मुख्य व्यवसाय

पशुपालन है। स्थायी रूप से खेती करने वाले लगभग सभी गोंडों को भूमि के स्वामित्व का अधिकार प्राप्त है, परन्तु बस्तर के पहाड़ी माड़िया जैसे गोंड अभी भी परिवर्तनीय खेती करते हैं तथा इनमें सामूहिक भू स्वामित्व की परम्परा विद्यमान है। सामान्यतः चल और अचल सम्पत्ति का अधिकार पुरुषों के मध्य ही हस्तान्तरित होता है।

3. संथाल

1981 में इनकी जनसंख्या 42.60 लाख थी, जो 1991 में 47.79 लाख हो गई। ये बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल एवं त्रिपुरा राज्यों में पाए जाते हैं तथा अनुसूचित जनजाति के रूप में विनिर्दिष्ट हैं। संथाल लोग संथाली भाषा बोलते हैं जिसकी 'ओल्विकी' नामक अपनी लिपि है। बिहार में इनकी जनसंख्या 36.52 प्रतिशत, उड़ीसा में 8.93 प्रतिशत एवं त्रिपुरा में 0.49 प्रतिशत है। प्रारम्भ में संथाल अपने जीवन यापन के लिए वनोपज के संग्रहण, शिकार, मछली मारने तथा तराई में परिवर्तनीय खेती करते थे किन्तु अब ये मुख्यतः खेती में संलग्न हैं। कृषि इनका मुख्य व्यवसाय है। इनमें से अधिकांश भूमिहीन श्रमिक हैं तथा इनके सामाजिक–आर्थिक जीवन में मौसमीय प्रवजन की महत्वपूर्ण भूमिका है।

4. उरांव

1981 में इनकी जनसंख्या 18.60 लाख थी, जो 1991 में 26.50 लाख हो गई। ये बिहार एवं मध्यप्रदेश राज्यों में पाए जाते हैं तथा अनुसूचित जनजाति के रूप में विनिर्दिष्ट हैं। उरांव लोग मुख्यतः कृषि पर निर्भर हैं। ऐसा माना जाता है कि छोटा नागपुर के पठार में हल चलाकर खेती का कार्य सर्वप्रथम उरांवों द्वारा ही प्रारम्भ किया गया। इधर उरांव कृषकों के प्रतिशत में गिरावट आई है। ऐसा देखा गया है कि उरांवों को उनकी कृषि भूमि से वंचित किया जाने लगा है जिससे वे मजदूर बनने के लिए बाध्य हो रहे हैं। सुरक्षात्मक भूमि कानून के होते हुए भी उन्हें उनकी भूमि से बेदखल करके रांची के आस–पास बड़ी और मध्यम औद्योगिक परियोजनाओं की स्थापना के लिए भू–अर्जन किया गया है। जनजातियों को बिना वैकल्पिक आधार दिए भूमि से बेदखली उन पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही है। ये सामान्यतः शुद्ध शाकाहारी होते हैं। स्वतन्त्रता आन्दोलन में इन्होंने सक्रिय भाग लिया। इसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने इन्हें इनकी भूमि से बेदखल कर दिया। इनमें से कुछ गांधी जी के प्रबल अनुयायी बन गए और 'असहयोग आन्दोलन' में भाग लिया।

5. मीना

राजस्थान में 1981 में इनकी जनसंख्या 20.87 लाख थी, जो 1991 में 28.01 लाख हो गई, जो देश के कुल मीना जाति का 99.99 प्रतिशत है। मध्यप्रदेश राज्य में 1991 की जनगणना के अनुसार 2,000 मीना पाए गए। ये अनुसूचित जनजाति के रूप में विनिर्दिष्ट हैं। राजस्थान के मीनाओं का गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। पहले राजस्थान के कई भागों पर इनका शासन था। अंग्रेजों द्वारा इन्हें अपराधिक जनजाति घोषित किया गया। मीनाओं का मुख्य व्यवसाय कृषि है। उनकी खेती के अधीन क्षेत्र अत्यधिक उपजाऊ से लेकर वीरान मरुस्थली तक फैले हैं। यहाँ सिंचाई साधन सन्तोषप्रद नहीं है।

6. मुंडा

1981 में इनकी जनसंख्या 14.24 लाख थी, जो 1991 में 16.18 लाख हो गई। ये बिहार, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, त्रिपुरा एवं पश्चिम बंगाल राज्यों में पाए जाते हैं तथा अनुसूचित जन जाति के रूप में विनिर्दिष्ट हैं। इनकी मुख्य भाषा मुंडारी है। मुंडा लोग मुख्यतः कृषक वर्ग से हैं। प्रारम्भ में भूमि का स्वामित्व सामुदायिक आधार पर था। उन्होंने निर्जन वनों को खेती के लिए साफ किया तथा यह भूमि उनकी 'खूँटकट्टी' बन गई। इस प्रकार की भूमि लगान रहित थी। बाद में 'उतकार', 'छतीसा' आदि विभिन्न भूमि काश्तकारी प्रणालियां अस्तित्व में आयीं, जिनमें केवल उसी वर्ष का लगान लिया जाता था, जिस वर्ष खेती की जाती थी। सन् 1981 में 71 प्रतिशत मुंडा कृषि कार्य करते थे जो 1991 में घटकर 57 प्रतिशत रह गया। इससे स्पष्ट है कि मुंडा कृषि संसाधनों से वंचित हुए हैं।

7. खोंड

1981 में इनकी जनसंख्या 9.91 लाख थी, जो 1991 में 11.46 लाख हो गई। ये मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बिहार, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र एवं पश्चिम बंगाल राज्यों में पाए जाते हैं तथा अनुसूचित जनजाति के रूप में विनिर्दिष्ट हैं। इनमें से लगभग 93 प्रतिशत उड़ीसा में, 6 प्रतिशत आंध्र प्रदेश में एवं शेष अन्य राज्यों में पाए जाते हैं। खोंड बहुत सीधे होते हैं। ये 'कोंधी' बोली बोलते हैं। पूर्व में खोंड यायावर का जीवन जीते थे और कन्दमूल तथा फलों पर जीवन निर्वाह करते थे। परन्तु अब वे मुख्यतः कृषक वर्ग के हैं। 'कुटिया' और 'डोगरिया' खोंड परिवर्तित खेती करते हैं, जो 'पोड़चा' कहलाती है। वें खोंड जिनके पास अपनी जमीन नहीं है, मजदूर के रूप में कार्य करते हैं। इनकी कृषि तकनीक बहुत ही पुरानी है। इनकी अर्थ व्यवस्था मुख्यतः कृषि एवं वनों पर आधारित है। इनकी मुख्य फसल हल्दी, मक्का, ज्वार, बाजरा आदि है। खोंड क्षेत्रों में वस्तु विनिमय प्रणाली अभी भी विद्यमान है। साप्ताहिक हाट इनके लिए अदला– बदली के केन्द्र का कार्य करते हैं जहाँ ये कृषि एवं वनोपज से अपने दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

आदिम जातियां

आदिवासियों की दशा की समीक्षा के लिए 1969 में योजना आयोग द्वारा गठित 'शीलु आव समिति' ने पाया कि जनजातीय समुदाय के अधिकांश लोग बहुत पिछड़े हुए हैं और इनमें से कुछ तो अभी भी आदिकालीन अन्न संचय युग में जी रहे हैं। इन समुदायों पर विशेष ध्यान

देने की आवश्यकता पर बल दिया गया। राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों में 47 जनजातीय समूहों की लगभग 23 लाख जनसंख्या को 'जन जातीय उप– योजना नीति' के एक अंश के रूप में आदिम जन जाति समूह के रूप में माना गया।

आदिम जनजातियों का राज्य वार विवरण निम्न प्रकार है–

राज्य/संघ शासित क्षेत्र	आदिम जनजाति	1991 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या	मुख्य व्यवसाय
आंध्र प्रदेश	बोडो गडबा, गुडोब गडबा, चेन्दू, पूर्जा, कोलम, कोंडा रेड्डी, डोंगरिया खोंड	3,11,543	खाद्य संग्रहण, कृषि, परिवर्तनीय खेती एवं विविध व्यवसाय
बिहार	असेर, बिरहोर, बिरजा, हिल खढ़िया, कोरवा, माल पहाड़िया, सौरिया, सवर	2,41,136	खाद्य संग्रहण, कृषि एवं परिवर्तनीय खेती
गुजरात	काथोडी, कोटवालिया, पाढर, सिडोइ, कोटघा	79,255	कृषि, परिवर्तनीय खेती एवं विविध व्यवसाय
कर्नाटक	जेमू कुरुवा, कोरामा	45,693	विविध व्यवसाय
केरल	चोलानायकयन, कादर, कट्टाउनायकन, कुरुम्बा, कोरगा	16,278	खाद्य संग्रहण
मध्य प्रदेश	अबूझमाड़िया, बैगा, भाड़िया, हिल कोरबा, कमार, साहरिया, बिरोहार	7,13,370	खाद्य संग्रहण, परिवर्तनीय खेती एवं विविध व्यवसाय
महाराष्ट्र	कट्कड़िया, कोलम, माड़िया गोंड	4,41,046	खाद्य संग्रहण, कृषि एवं विविध व्यवसाय
मणिपुर	मर्रम नागा	9,592	कृषि
उड़ीसा	बिरहौर, बोंडा पोराजा, दीदाई, डोंगरिया खोंड, जुआंग खाड़िया, कुटिया खोंड, लांजिया सौरत, लोढा, मानकी दियास, पौड़ी भुयन, सौरा	70,725	खाद्य संग्रहण, कृषि, परिवर्तनीय खेती एवं विविध व्यवसाय
राजस्थान	सहरिया	59,510	विविध व्यवसाय
तमिलनाडु	कट्टूनायकन, कोटा, कुरुम्बा, इरुला, पणियन, टोडा	1,95,332	खाद्य संग्रहण, परिवर्तनीय खेती एवं विविध व्यवसाय
त्रिपुरा	रियांग	1,11,606	परिवर्तनीय खेती
उत्तर प्रदेश	बुक्सा, रजिया	36,349	खाद्य संग्रहण, कृषि
पश्चिम बंगाल	बिरहोर, लोढा, टोटो	68,950	खाद्य संग्रहण
अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह	ग्रेट अण्डमानी, जरवा, ओंगे, सेंटनेली, शोम्पेन	23,36,286	खाद्य संग्रहण

आदिवासी सदा से ही वनों में रहते आए हैं इसलिए आदिवासियों एवं वनों के बीच अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। ईंधन, पशुओं के लिए चारा, फल–फूल, जड़ी–बूटी, कृषि औजार, लकड़ी आदि के लिए वे वनों पर ही आश्रित हैं। वन से ही उन्हें भोजन प्राप्त होता है एवं उनकी जीविका चलती है। उनकी संस्कृति मूलतः अरण्य संस्कृति है। वे अनेक पेड़–पौधों एवं जीव–जन्तुओं की पूजा करते हैं।

प्राचीन काल में आदिवासी लोग वनों के संसाधनों का स्वतन्त्रतापूर्वक उपभोग करते थे तथा अपने को वनों का मालिक समझते थे। 19 वीं शताब्दी के अन्त में वनों का प्रबन्ध सरकार द्वारा देखा जाना प्रारम्भ होने से उनके अधिकारों में कटौती हुई। 1894 की वन नीति में लोक हित में वनों पर राज्य सरकार का नियन्त्रण प्रस्तुत किया गया जिससे आदिवासियों के अधिकारों में कटौती हुई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त 1952 में नई राष्ट्रीय वन नीति घोषित की गई। इससे जनजातियों पर निम्न प्रभाव पड़ा–

1. खेती के लिए वन भूमि देने सम्बन्धी छूट वापस लिये जाने से आदिवासी प्रभावित हुए।
2. ग्रामवासियों की वन–आधारित आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु ग्राम–वनों की स्थापना की गई।
3. निजी वनों को राज्य सरकार के अधीन लाया गया।
4. वनों में निःशुल्क चराई की सुविधा समाप्त की गई।
5. आदिवासियों को परिवर्ती खेती की पारम्परिक प्रथा से छुड़ाने का प्रयास किया गया।

गौण वन उपज

गौण वन उपज आदिवासियों को महत्वपूर्ण आहार एवं जीविका के साधन प्रदान करती है। पहले यह आदिवासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति किया करती थी। बाद में कुछ गौण वन उपजों की कीमत बढ़ जाने से ये व्यापारिक महत्व की हो गईं, जिससे आदिवासियों को कुछ

आय होने लगी। बाद में व्यापार का नियन्त्रण वन विभाग को सौंपा गया। इससे व्यापारियों को एकमुश्त राशि के भुगतान पर लघु वनोपज को संग्रह करने अथवा संग्रहीत मात्रा पर रॉयल्टी देने की प्रक्रिया का प्रारम्भ हुआ। व्यापारीगण सामान्यतः आदिवासियों से वनोपज संग्रह कार्य कराते हैं। इस प्रक्रिया में विसंगतियों को देखते हुए विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा कतिपय गौण वन उपज को राष्ट्रीयकृत कर दिया गया है। राष्ट्रीयकृत वन उपजों के खरीदने का एकाधिकार राज्य सरकारों में निहित है। विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा इनकी कीमतें भी निर्धारित कर दी गई हैं।

आदिवासी क्षेत्रों में लघु वन उपज विपणन की समस्या के निराकरण हेतु भारत सरकार द्वारा 1987 में राष्ट्र स्तरीय सर्वोच्च सहकारी विपणन संगठन के रूप में 'भारतीय आदिवासी सहकारी विपणन विकास फेडरेशन' स्थापित किया गया। यह राज्य आदिवासी सहकारी विपणन विकास फेडरेशनों और राज्य विकास निगमों को गौण वन उपजों तथा अन्य जनजातीय उत्पादों के अन्तर–राज्यीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में सहायता प्रदान करता है।

देश में लगभग 5,000 वनग्राम हैं जिनमें लगभग दो लाख जनजातीय परिवार रहते हैं। ये पूर्ण रूप से वनों पर निर्भर हैं।

वनवासियों एवं अन्य अनुसूचित जनजाति की समस्याओं के दृष्टिगत भारत सरकार द्वारा 'अनुसूचित जनजाति व अन्य पारम्परिक वनवासी(वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम–2006 पारित किया गया है। वन में निवास करने वाली ऐसी अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य परम्परागत वन निवासियों के जो ऐसे वनों में पीढ़ियों में निवास कर रहे हैं किन्तु उनके अधिकारों को अभिलिखित नहीं किया जा सका है, को वन अधिकारों और वन भूमि के अधिभोग को मान्यता देने एवं वन भूमि में इस प्रकार निहित वन अधिकारों को अभिलिखित करने के लिये इस अधिनियम का निर्माण किया गया। इस अधिनियम के अध्याय–2 के अन्तर्गत प्रदत्त मुख्य अधिकार निम्नवत हैं–

1. इस अधिनियम के प्रयोजनो के लिए, वन में निवास करने वाली अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य परम्परागत वन निवासियों के सभी वन भूमि पर निम्नलिखित वन अधिकार होंगे, जो व्यक्तिगत व सामुदायिक भूधृति या दोनों को सुरक्षित करते हैं अर्थात्–

- वन में निवास करने वाले अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासियों के किसी सदस्य या किन्हीं सदस्यों द्वारा निवास के लिये या जीविका के लिये स्वयं खेती करने के लिये व्यक्तिगत या सामुदायिक अधिभोग के अधीन वन भूमि को धारित करने और उसमें रहने का अधिकार।
- निस्तार के रूप में सामुदायिक अधिकार, चाहे किसी भी नाम से ज्ञात हों, जिनके अन्तर्गत तत्कालीन् राजाओं के राज्यों, जमींदारी या ऐसे अन्य मध्यवर्ती शासनों में प्रयुक्त अधिकार भी सम्मिलित है।
- गौण वन उत्पादों के, जिनका गांव की सीमा के भीतर या बाहर पारंपरिक रूप से संग्रह किया जाता रहा है स्वामित्व संग्रह करने के लिये पहुँच, उनका उपयोग और व्ययन का अधिकार रहा है।
- यायावरी या चारागाहों समुदायों की मत्स्य और जलाशयों के अन्य उत्पाद, चरागाह (स्थापित और घुमक्कड़ दोनों) के उपयोग या उन पर हकदारी और पारम्परिक मौसमी संसाधनों तक पहुँच के अन्य सामुदायिक अधिकार।
- वे अधिकार जिनके अन्तर्गत आदिम जनजाति समूहों और कृषि पूर्व समुदायों के लिये गृह और आवास की सामुदायिक भू–धृतियां भी है।
- किसी ऐसे राज्य में, जहाँ दावे विवादग्रस्त हैं, किसी नाम पद्धति के अधीन विवादित भूमि में या उस पर के अधिकार।
- वन भूमि पर हक के लिये किसी स्थानीय प्राधिकरण या किसी राज्य सरकार द्वारा जारी पट्टी या धृतियों या अनुदानों के संपरिवर्तन के अधिकार।
- वनों के सभी वन ग्रामों, पुराने आवासों, असर्वेक्षित ग्रामों और अन्य ग्रामों के बसने और संपरिवर्तन के अधिकार चाहे वे राजस्व ग्रामों में लेखाबद्ध हों, अधिसूचित हों अथवा नहीं।
- ऐसे किसी सामुदायिक वन संसाधन का संरक्षण, पुनरुज्जीवित या संरक्षित या प्रबंध करने का अधिकार, जिसकी वे सतत् उपयोग के लिये परंपरागत रूप से संरक्षा और संरक्षण कर रहे हैं
- ऐसे अधिकार जिनको किसी राज्य की विधि या किसी स्वशासी जिला परिषद् या स्वशासी क्षेत्रीय परिषद की विधियों के अधीन मान्यता दी गयी है या जिन्हें किसी राज्य की सम्बन्धित जनजाति की किसी पारंपरिक या रूढ़िगत विधि के अधीन जनजातियों के अधिकारों के रूप में स्वीकार किया गया है।

- जैव विविधता तक पहुँच का अधिकार और जैव विविधता तथा सांस्कृतिक विविधता से सम्बन्धित बौद्धिक संपदा और पारंपरिक ज्ञान का सामुदायिक अधिकार।
- कोई ऐसा अन्य पारंपरिक अधिकार जिसका, यथास्थिति, वन में निवास करने वाली, उन अनुसूचित जनजातियों या अन्य परंपरागत वन निवासियों द्वारा रुढ़िगत रूप से उपभोग किया जा रहा है, जो खंड (क) से खंड (ट) में वर्णित है, किन्तु उनमें किसी प्रजाति के वन्य जीव का शिकार करने या उन्हें फंसाने या उनके शरीर का कोई भाग निकालने का परंपरागत अधिकार नहीं है।
- यथावत पुनर्वास का अधिकार, जिसके अन्तर्गत उन मामलों में आनुकल्पिक भूमि भी है जहाँ अनुसूचित जनजातियों और अन्य परंपरागत वन निवासियों को 13 दिसम्बर, 2005 के पूर्व किसी भी प्रकार की वनभूमि से पुनर्वास के उनके वैध हक प्राप्त किये बिना अवैध रूप से बेदखल या विस्थापित किया गया हो।

2. वन संरक्षण अधियिनम–1980 में किसी बात के होते हुये भी केन्द्रीय सरकार, सरकार द्वारा 1980 का 69 व्यवस्थित निम्नलिखित सुविधाओं के लिये वन भूमि के परिवर्तन का उपबंध करेगी जिसके अन्तर्गत प्रति हेक्टेयर पचहत्तर से अनधिक पेड़ों का गिराया जाना भी है, अर्थात्– विद्यालय, औषधालय या अस्पताल, ऑगनबाड़ी, उचित कीमत की दुकानें, विद्युत और दूरसंचार लाइनें, टंकिया और अन्य लघु जलाशय, पेय जल की आपूर्ति और जल पाईपलाइनें, जल या वर्षा जल संचयन संरचनायें, लघु सिंचाई नहरें, अपारंपारिक ऊर्जा स्रोत, कौशल उन्नयन या व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र, सड़कें तथा सामुदायिक केन्द्र।

इस प्रकार इस अधिनियम में वनवासियों के अधिकारों को व्यापक मान्यता प्रदान की गई है। गरीब एवं अविकसित आदिवासियों एवं वनवासियों को राष्ट्र की मुख्य धारा में लाने की दिशा में यह अधिनियम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आदिवासियों एवं वनवासियों के सहयोग से वनों की प्रभावी सुरक्षा होगी तथा पर्यावरण संरक्षण हेतु यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य होगा।

संदर्भ

1. पाण्डेय, गया(2007) भारतीय जनजातीय संस्कृति, कंसैप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, भारत।
2. तिवारी, डी0 एन0(1989) वन आदिवासी एवं पर्यावरण, शांति पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, उ0प्र0, भारत।
3. शुक्ला, आर0 एस0(2000) फॉरेस्ट्री फॉर ट्राइबल डेवेलपमेंट, व्हीलर्स पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, भारत।